कृति बहुमत

अंक : 20 | जुलाई : 23 | वर्ष : 02

R.N.I. No. : CHHHIN/2021/81637 | रचना और विचार की मासिक पत्रिका | मूल्य : 100 रू.

कविताएं

प्रत्यूष पुष्कर

कवि एवं कलाकार । संगीत, फोटोग्राफी एवं कला की अन्य विधाओं में विशेष रुचि। हिंदी एवं अंग्रेजी में लेखन । कला और कविता सम्मिलित प्रदर्शनियां देश-विदेश में आयोजित।

सम्पर्क :
reachingpushkar@gmail.com

खोरी

माँ, देर से!

तुम तो रोज़ सो ही जाती थी
अब जब दोस्त भी सो जाते हैं-
अब जब जागरण पर दैनिक-
दैहिक असहमतियाँ हैं
अकेलेपनों का भी सारा ज़ोर
चैन से सो सकने पर लगा हुआ है

माँ, दूर से...

इस नैसर्गिक विश्राम में
स्वप्न और तुम्हारे बीच मुझे अक्सर एक
विश्राम को लेकर निस्संदेह
विश्वस्त
कम्बल मर्दती काली-उजली
बिल्ली दिखाई देती है
जिसकी
आँखों में-
जागरण का बचा हुआ उत्साह !

माँ, पता !

दैनिकता के तरंगों का कोई औदात्य तुमसे है,
और जीभ से तरंगें बोकर
मिटती है बिल्लियों की प्यास!

माँ, जानती !

मेरे भारी आराम में
देह में ऐसे कसमसाना
जागने लगना पुरखों का-
और मेरे सपनों का अक्सर ये
स्थगन ईश्वरीय है

मेरी बिल्लियाँ बीते
बस दो दिन की चीजें
रात सपनों में से देखती है।

धमक

निर्जनता से नहीं निष्प्राण जो
स्नेह जिनका आकुल नहीं
जिनके भीतर ध्वनियाँ आकर
माँ बिल्ली सा ठाठ
घूँघरती-

वो लोग-
धीरे धीरे विस्मृत होते रहे

अब जब नहीं लगनी थी नज़र
हमलोग!
नज़रों को लगने लग देने की जिद्द लेकर
बैठे रहते...
बैठे रहते...
बैठे रहते !

संप्रभुता सत्र-
भाषा ने निष्क्रियता के जो कथ-
गीत अगिनत, अभोग्य
उत्कल, उपाय उगाहे-

सक्रिय संवाद के दो क्षण भी
दो सांस को तरसने लगे

ऐसा नहीं था कि लोगों को देखकर
चैन पड़ जा रहा हो
ऐसा नहीं था कि लोगों को देखकर
चैन नहीं पड़ रहा हो

उनकी साँसों का कम से कम सच था बुझाया
भाषा का निज
कितना कूट-
कितना कोमल
आग्रह !

वो दूर से आते लोग प्रिय थे-
जो निश्वास प्रकट होते-
भाषा में धमक !

संघनन

मेरा भी एक अभिमान है

पुरखें उपस्थित रहती हैं-
जो मैं आखिर सूखती
चमड़ी खुरच
कर अपने घाव खुले
नम पारिस्थितिकी को सौंपता हूँ

पानी के सामने संघनित-
हवा के साथ बहने की साखी
जब
मेरी काठ की
देह नहीं होती

तब भी मुझे आकाश से लौटती बूंदों से कोई डर नहीं लगता है.

(जब बचपन में लगता भी था तो माँ
मारकर ठीक कर देती थी)

•••